पारस-बेली

डॉ. अनिल कुमार पाठक

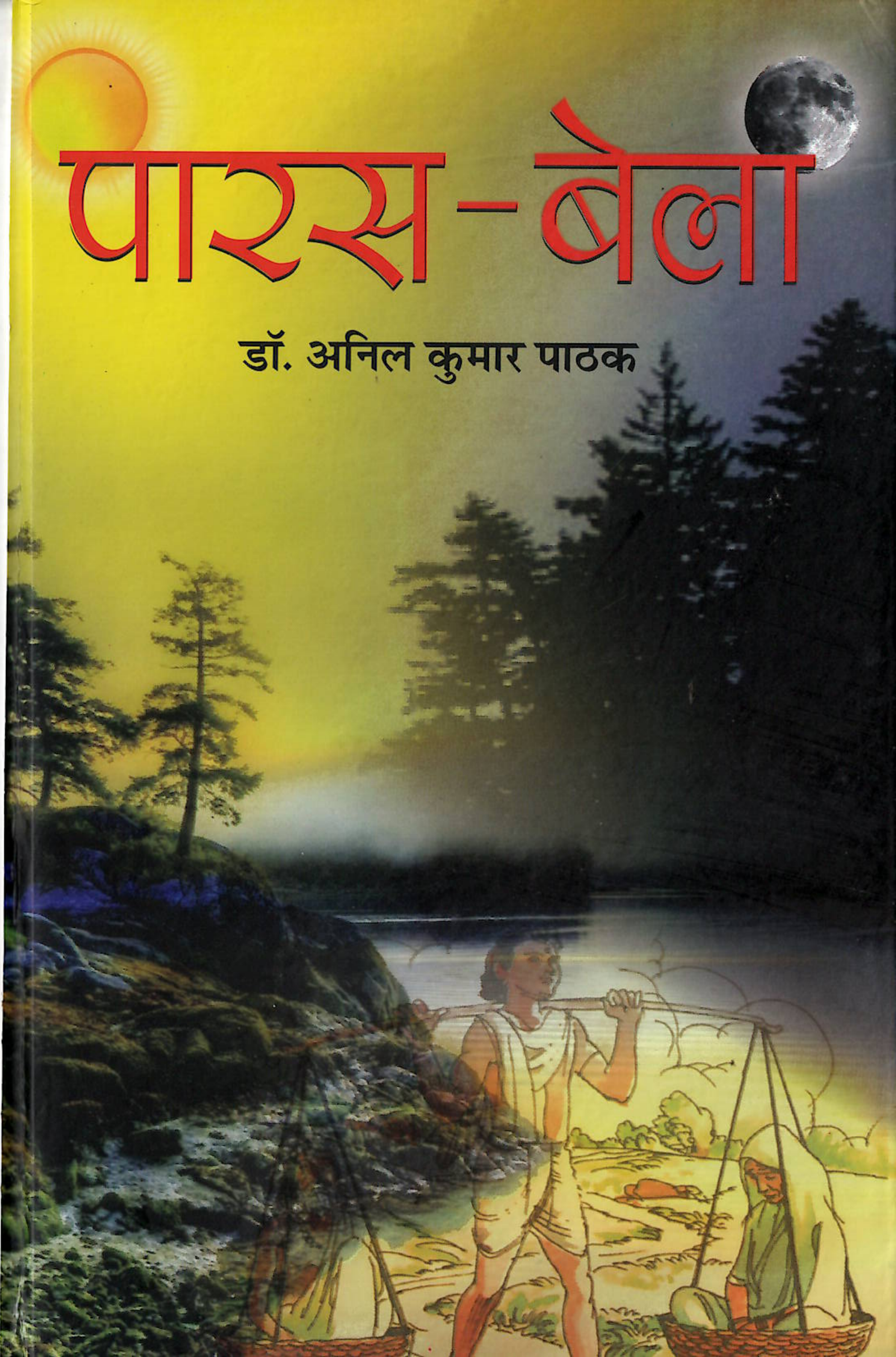

पारस-बेला

डॉ. अनिल कुमार पाठक

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001:2008 प्रकाशक

प्रकाशक • **प्रभात प्रकाशन**
4/19 आसफ अली रोड,
नई दिल्ली–110002
सर्वाधिकार • डॉ. अनिल कुमार पाठक
संस्करण • प्रथम, 2017
मूल्य • दो सौ पचास रुपए
मुद्रक • आर–टेक ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

PARAS-BELA *poems* by Dr. Anil Kumar Pathak ₹ 250.00
Published by Prabhat Prakashan, 4/19 Asaf Ali Road, New Delhi-2
e-mail: prabhatbooks@gmail.com ISBN 978-93-86300-56-0

ममतामयी 'माई' बेलादेवी

एवं

दिग्दर्शक 'बाबू' पारसनाथ पाठक 'प्रसून' के प्रति

जिनकी पुनीत स्मृतियाँ ही

जीवन का संबल हैं।

'मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सब तेरा…'

(कबीरदास)

"यह जीवन, उनका वरदान
मेरे लिए वही भगवान्
पिता राम, माई सीता है।
मात-पिता बिन सब रीता है।"

(इसी काव्य-संग्रह से)

शुभाशंसा

सांप्रतिक दौर के भौतिकता प्रधान समाज में आत्मीय संबंधों की गहनता और ऊष्मा निरंतर छीजती जा रही है। निकटतम खून के रिश्ते भी क्षरित होते जा रहे हैं। उनकी परिभाषा बदलती जा रही है। जहाँ संबंधों के मूल्यांकन, उनकी अर्थवत्ता और चरितार्थ का मापदंड स्वार्थपरकता, स्वकेंद्रीयता और आत्मनिष्ठता हो गई हो, वहीं इसी के समानांतर डॉ. अनिल कुमार पाठक की काव्य-रचना 'पारस-बेला' प्रतिपक्ष में खड़ी है, जो चित्तवृत्ति को झकझोर देनेवाली कृति प्रमाणित होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि आज क्षीण होते संबंधों के विपक्ष में सिर उठाकर यह सर्जना कह रही हो कि नहीं, अभी भी संबंधों की ऊष्मा और ऊर्जा, लगाव एवं आत्मीयता सभी कुछ बची हुई है, नि:शेष नहीं हुई है।

डॉ. अनिल कुमार पाठक का काव्य-संग्रह 'पारस-बेला' हिंदी साहित्य की शोकगीत (Elegy) परंपरा का पुरश्चरण प्रतीत होता है। महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने अपनी पुत्री के असामयिक निधन पर अपने हृदय के भावोच्छवासों को 'सरोज स्मृति' में रूपायित किया तो डॉ. जगदीश गुप्त ने माँ के प्रति पुत्र के शोकाकुल मन को 'माँ के लिए' काव्य में शब्दायित किया। डॉ. पाठक ने अपने माता-पिता के विछोह में अत्यंत विह्वल और संतप्त मन के एक-एक भाव को अपनी रचना 'पारस-बेला' में उड़ेलकर रख दिया। यह काव्यकृति शोक-काव्य-परंपरा की अग्रिम कड़ी के रूप में अपना महत्त्व सिद्ध करती है।

माता-पिता का वात्सल्य एवं हितचिंता अपनी प्रत्येक संतान के प्रति

समानरूपेण होता है, पर संतान उसे कितना महत्त्व, कितना मान देती है, यह व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर करता है। डॉ. पाठक ने अपने प्रति माता-पिता के प्रत्येक भाव, व्यवहार, हितचिंता, वात्सल्य, मंगलकामना, शुभाशीष—सभी कुछ को अपने अंतर्तम से महसूस किया है, जिसका करुण आख्यान यह कृति है। पितृस्नेह से वंचित होने के उपरांत पुत्र का हृदय पिता के उस लाड़, दुलार के लिए, उनके प्रत्येक रागात्मक, संरक्षणात्मक भाव के लिए मानो तरस रहा है, रुदन कर रहा है, उसमें जो व्यथा है, अभाव की जो अनुभूति है, उसकी गहनता शब्दों में वर्ण्य नहीं है फिर भी लेखक ने उसे व्यक्त करने की संपूर्ण चेष्टा की है।

एक अत्यंत विशेष बात जो महाकवि निराला और डॉ. जगदीश गुप्त की उपर्युक्त कृतियों में परिलक्षित होती है, वह यह कि उन्होंने अपनी पुत्री और माँ के स्वभाव, चरित्र और व्यक्तित्व के वैशिष्ट्य को उद्घाटित करते हुए, उसके परिप्रेक्ष्य में अपने व्यथासिक्त उद्गार व्यक्त किए, तद्वत डॉ. पाठक ने भी माता-पिता के स्वभावगत, चरित्रगत, व्यक्तित्वगत तथा अंतर्मन की विशेषताओं के आख्यान और अनुभूति के साथ अपनी वाणी को इस कृति में सार्थक कर दिया।

ऐसे सपूत को पाकर उन माता-पिता की आत्मा दैवलोक में भी पूर्ण मनःतोष का अनुभव कर रही होगी। आज के निर्मम समय में जब कि संतानों की उदासीनता और उपेक्षा के कारण नित्यप्रति नए-नए वृद्धाश्रम और ओल्ड-एज-होम खुलते जा रहे हैं, डॉ. पाठक जैसी पचास प्रतिशत भी संतति हो जाए, तो माता-पिता के मन का असुरक्षा भाव समाप्त हो जाए। इस कृति का अध्ययन-अवगाहन कर प्रत्येक व्यक्ति ऐसी संतान की प्राप्ति-कामना से भर उठेगा।

डॉ. पाठक ने अपने 'माई-बाबू' को सर्वत्र अपने व्यक्तित्व-विधायक, निर्माता, मित्र, पथप्रदर्शक और विघ्ननिवारक के रूप में देखा है। उनकी स्वीकारोक्ति है कि वे आज जो भी हैं—माता-पिता के सहज वात्सल्य और दिशा-निर्देश के फलस्वरूप हैं। जब कि आज प्रायः देखने में आता है कि हर वह व्यक्ति जो किसी मुकाम पर पहुँच गया है, अपनी सफलता

का सारा श्रेय स्वयं को देता है, भले ही उसने माँ-बाप को सोपान बनाकर ऊँचाई हासिल की हो। इस स्थान पर डॉ. पाठक अत्यंत सरल, सहज, कृतज्ञ और अमल-धवल आत्म के व्यक्तित्व नज़र आते हैं।

डॉ. पाठक को इस कठिन और कठोर कालखंड का श्रवण कुमार कह सकते हैं, यद्यपि वे इसे नकारते हैं पर जिस शिद्दत के साथ, जिस भावातिरेक के साथ, जिस मार्मिकता के साथ वे अपने 'बाबू-माई' के अभाव की अनुभूति करते हैं, वह विरल ही है। माता-पिता के अवश्यंभावी विछोह को जो सहन नहीं कर पा रहा हो, ऐसी संतान आज दुर्लभ है।

कृति की ओर चलते हैं तो रचनाधर्मी कवि-पुत्र के हृदय की आर्तपुकार और व्यथार्द्र नाद ही सुनाई पड़ता है। अपने पूज्य माँ-बाबू के लिए जैसे उनका अंतर्मन चीत्कार कर रहा है। उनकी बाल-सुलभ इच्छा है कि कहीं से 'माई-बाबू' पुन: उनके जीवन में लौट आएँ, उनकी छत्रछाया उन्हें पुन: प्राप्त हो जाए, क्योंकि जीवन की सारी प्रसन्नता, सरसता, उल्लास, उत्साह, प्रेरणा—सब उनके साथ ही चली गई। जीवन नीरस और मूक हो गया है। उनके बिना जीवन में शून्यता भर गई है। वे अपने को अभागा और अनाथ अनुभव करते हैं। पिता की वंदना करते हैं, उन्हीं के गीत गाते हैं।

''हे प्राणतत्त्व, हे सारतत्त्व, तुम जीवन थे इस काया के।
थे सूत्रधार, तुम कर्णधार, अपनी इस सारी माया के॥''

पुत्र की दृष्टि में पिता का स्थान ईश्वर से कम नहीं। ईश्वर की भाँति वे उन्हें सर्वत्र व्याप्त देखते हैं।

''तुम्हीं सत्य, शिव औ' सुंदर हो, तुम अनादि, शाश्वत, अक्षर हो।
अमृतमय, करुणा सागर हो, शीतल किरणों का आगर हो,
तप्त हृदय में बाबूजी, कहाँ नहीं तुम बाबूजी॥''

पिता के असंख्य गुणों का स्मरण पुत्र करता है। वे ज्ञान-विज्ञान के प्रवाहक थे। उनका 'पारस' नाम अत्यंत सार्थक है। 'यथा नाम तथा गुण' का चरितार्थक है। वे जिस कुधातु का स्पर्श कर देते हैं, वह स्वर्ण बन जाता है। जिस किसी के सिर पर उन्होंने अपने स्वस्तिमय हाथों को रखा, वह जीवन में सफल व पूर्णकाम हुआ।

पंचतंत्र में उल्लिखित है कि '**कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न धार्मिकः।**' (उस पुत्र के उत्पन्न होने से क्या लाभ, जो न विद्वान् ही हुआ, न धार्मिक) कवि के पिता स्वयं विद्वान् और धार्मिक होने के साथ पुत्र को भी उन्होंने विद्वत्ता और धार्मिकता का पाठ पढ़ाया।

कवि पिता के व्यक्तित्वगत वैशिष्ट्य का पुनः व पुनः उल्लेख करता है। मानवता के पोषक, पीड़ित जन के रक्षक, सत्य के पक्षधर, अहंकार शून्य, धर्मधुरीन, अचल धैर्यवान, कंटकाकीर्ण मार्ग पर भी नैतिकता का पालन करते हुए सत्पथ पर अग्रसर होनेवाले, पुत्र को सच्चरित्र और आदर्श बनने की प्रेरणा देनेवाले, जीवन की कठिनतम परीक्षाओं में असफल न होनेवाले इत्यादि, न जाने कितने गुणों का स्मरण करके पुत्र का मन गर्वोन्नत होने के साथ-साथ विछोह में बिलखता भी है—

''जीवन उनका भोगा यथार्थ, वे सत्यनिष्ठ, रत परहितार्थ।
आजीवन ही यह दृष्टि रही, थे सेवा में नित बढ़े हाथ॥''

पिता के बिना जीवन की रिक्तता का हृदयावर्जक वर्णन करते हुए कवि कहता है—

''तेरे जाने से बाबूजी, बस तेरे ही जाने से।
सबकुछ सूना, रीता, फीका बस तेरे खो जाने से॥''

प्रकृति पर भी उनके अभाव का प्रभाव कवि पुत्र को परिलक्षित होता है। जैसे वसंत का आगमन स्थगित हो गया है। चारों ओर पतझड़ का ही विस्तार दिखाई पड़ता है—

बाबू तेरे ही गम में, आमों के बौर नहीं आये,
पतझड़ ही चहुँओर हुआ, नहिं बसंत कहीं बगराये॥

अपने रोम-रोम में, एक-एक धड़कन में, कण-कण में हर पल उन्हें ही समाहित पाता है। उस पिता-व्यक्तित्व का अभाव केवल संतान या परिजन ही नहीं अनुभव कर रहे हैं, वरन् उनसे जुड़े प्रकृति के सारे अंगोपांग, पशु-पक्षी, जल-थल, पेड़-पौधे—सभी अनुभव कर रहे हैं। गाय-बछिया, खेत-खलिहान, आम-आँवला, बाग-बगीचा, ताल-तलैया—सभी उनके विछोह से संतप्त हैं, मुरझाए हुए हैं। यह पितृ-शोक में निमग्न कवि-हृदय

का आत्म-विस्तार है। इसीलिए वह सर्वत्र पिता की व्याप्ति देखता है। 'कहाँ नहीं तुम बाबू जी'—शीर्षक कविता इसका प्रमाण है—

''जल में, थल में, नीलगगन में, चहुँदिशि सुरभित मलयपवन में।
सूर्य-रश्मि औ' चंद्र-किरन में, दुःख में, सुख में, प्रमुदित मन में।
व्याप्त सदा तुम बाबू जी, कहाँ नहीं तुम बाबू जी॥''

तत्पश्चात् माँ के अंतरवाह्य व्यक्तित्व का समवेत और एकांत चित्रण भी कविपुत्र ने किया है। उनकी स्नेहसिक्त स्मृतियाँ ही कवि-जीवन का पाथेय है।

स्रष्टा की इस सृष्टि का सबसे विलक्षण, अद्भुत, अद्वितीय और सक्षम संबंध-भाव है—माँ और उसकी ममता। माँ के बराबर विधाता के रचना-विधान में दूसरा कोई नहीं। धरती की भाँति सहनशील और अनंत के विस्तार के समान ममतामय। कवि की दृष्टि में भी माँ सबसे न्यारी है, जो जीवनदायिनी होने के साथ ही निःस्वार्थ स्नेह की धात्री है। संतान के जीवन के प्रतिपल में वह मूर्त-अमूर्त भाव से उसके संग खड़ी रहती है। 'कुमाता न भवति' उक्ति ही माँ की सुखद, शुभ संरचना है। वह प्रभु का दूसरा रूप है, भक्ति की प्रतिमूर्ति है। दया, प्रेम, अनुराग, समता, समदर्शिता निर्मलता, निश्छलता आदि उसके व्यक्तित्व विधायक कारक है। कवि के शब्दों में देखें तो—

''अतुलनीय, अद्वितीय, अगोचर, तू ही तो माँ अमर धरा पर।
कलुष-तमस से दूर ज्योतिर्मय, तू विजयी है मरण-जरा पर॥
पुत्र कुपुत्र भले हो जाए
नित ममतामय तू ही एक
माँ हैं तेरे रूप अनेक॥''

नितांत स्वाभाविक और सुपरिचित भावों से कविपुत्र अपनी माँ की गरिमामयी गतिविधियों और क्रियाकलापों का आख्यान करता है कि संतान की कल्याण-साधना के लिए माँ कोई द्वार खटखटाने से विरत नहीं होती। मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, मजार, सतीचौरा, कुआँ, पोखर, नदीतट आदि स्थानों पर जाती है और निर्जल-व्रत रखकर उसकी मंगलकामना करती है, किंतु

पुत्र उसका प्रतिदान न देकर प्राय: उसे भूल जाता है पर इस पुत्र की आँखें माँ की ममता, लाड़-दुलार और उसके संग की गई बालसुलभ अठखेलियों का स्मरण कर सदैव नम रहती हैं। डॉ. पाठक भी माँ के वात्सल्य को धन्य कहते हैं, जैसे कि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने कहा है कि,

माता का वात्सल्य धन्य है, धन्य-धन्य उसकी उदारता।
सब कुछ हो पर माँ न रहे तो, जीवन में सारी असारता॥

'पारस-बेला' काव्य-संग्रह की अंतिम कविता 'यादें...' अत्यंत मार्मिक और हृदयद्रावक बन पड़ी है। माता-पिता के दिवंगत हो जाने के पश्चात् पैतृक घर में जब कवि जाता है तो उसका सूनापन उसे खाने दौड़ता है। माँ-पिता के बिना घर भी निर्जन हो गया है। वस्तुस्थिति तो यह है कि उस घर को जीवंतता प्रदान करनेवाले स्वामी-स्वामिनी नहीं रहे तो मिट्टी, ईंट, पत्थर का घर बेजान और निर्जीव हो ही जाएगा। नाना स्मृतियाँ कवि के मन:पटल पर चलचित्र की भाँति चलायमान हैं। इसी घर में माँ, पुत्र के आगमन की आशा में पलक-पाँवड़े बिछाए उसकी प्रतीक्षा करती रहती थी, किंतु आज कोई कहनेवाला नहीं कि,

"नहीं बुलाता अब कोई,
बेटा आ जा अंदर,
बाहर धूप बहुत है,
चल रहे थपेड़े लू के,
पी ले गोरस,
घोल सत्तू के;"

घर के एक-एक कोने में वह जाता है। तमाम घटनाएँ, तमाम यादें उसके स्मृतिपट पर कौंधती हैं, जो पूर्व में उसने सँजोई थीं, किंतु अब स्थितियाँ विपरीत हो गई हैं। अब घर में कोई दिया जलानेवाला नहीं रहा। बिना दिया-बाती के अंधकारमय सूने घर की नीरवता में वह रुक नहीं पाता। माता-पिता का पूर्व में सुसज्जित घर और उसकी सुनहली यादों से उद्विग्न होकर वह पैतृक आवास से तत्काल त्वरित गति से निकल पड़ता है।

"ले चल मुझको दूर यहाँ से
इन यादों को छोड़ यहीं अब,
बिन यादों के,
पास खोखली
बुनियादों के…"

माँ-पिता के बिना उसे सबकुछ खोखला लगता है, यहाँ तक कि उसके स्वयं द्वारा निर्मित नीड़ की नींव भी।

डॉ. पाठक की इस कृति के अवगाहन से स्पष्ट है कि वे माता-पिता के अनन्य भक्त और आज्ञाकारी पुत्र रहे हैं। वह उनका ही सौभाग्य है जैसा कि मानस की पंक्तियाँ कहती हैं—

"सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी, जो पितु-मातु बचन अनुरागी॥"

सच तो यह है कि माता-पिता के चरण-कमलों का स्पर्श और वंदन करके पाप-पुंजों का नाश करके ही पुत्र वास्तविक अर्थों में सुपुत्र-पद प्राप्त कर पाता है, कविवर 'हरिऔध' की पंक्तियाँ प्रमाण हैं—

"सुत पाता है पूत पद, पाप पुंज को मूँज।
माता पद पंकज परस, पिता कमल पद पूज॥"

डॉ. पाठक ने अपने माता-पिता के पुण्य आशिष् से 'सुत' से 'पुत्र' पद की प्राप्ति कर ली है।

जाने-अनजाने, चाहे-अनचाहे माता-पिता के प्रति पुत्र के मन में कदाचित् उदासीनता, उपेक्षा अथवा अनुत्तरदायित्व का भाव आ गया हो तो उसके लिए ग्लानि और पश्चात्ताप का भाव भी दृष्टिगत होता है। माता-पिता के अभाव की पूर्ति तो कदापि नहीं हो सकती। यह सोचकर पुत्रकवि का हृदय वेदना के समुद्र में डूब-उतरा रहा है।

भाषा शिल्प की दृष्टि से इस कृति की भाषा और शैली अत्यंत सरल, सहज, अकृत्रिम किंतु भावानुगामिनी है। बिना किसी बनावट, बिना किसी साज-शृंगार के, लोक और वेद के शब्द-संघटन द्वारा कवि ने अपनी भावनाओं को वाग्मिता प्रदान की है। तुक, लय, ताल, छंदबद्धता और गति का पूर्ण निर्वाह प्राप्त होता है। कोई-कोई कविता अतुकांतता का भी प्रादर्श

है, पर गीतितत्त्व वहाँ भी विद्यमान है।

मातु-पिता के लिए पुत्र की ऐसी आर्तपुकार, ऐसा विह्वल रुदन विरल ही दृष्टिगत होता है। एक वाक्य में यही कह सकती हूँ कि माता-पिता-पुत्र के अंतरंग स्नेह संबंधों की करुणगाथा है यह कृति। इस दृष्टि से डॉ. अनिल कुमार पाठक की मातृ-पितृ-भक्ति, श्रद्धा, सम्मान, संवेदनशीलता प्रणम्य है, नमन योग्य है।

ईश्वर से प्रार्थना है कि डॉ. पाठक की लेखकीय प्रतिभा, रचनाधर्मिता, अनवरत, उत्तरोत्तर और उत्तमोत्तम रूप से निखरती रहे, अधिकाधिक सुंदर, प्रौढ़ और परिपक्व रचनाएँ वे पाठक जगत् के समक्ष प्रस्तुत करते रहें। इसी शुभाशंसा स्वस्तिवचन के साथ···।

—प्रो. कैलाश देवी सिंह
पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष
हिंदी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ

प्रस्तावना

कुछ दिनों पूर्व मुझे एक 'पेंटिंग' देखने का अवसर मिला। यह एक पुस्तक में छपी थी। इसमें उन्मुक्त प्राकृतिक परिवेश में सूर्योदय के समय एक बनवासी परिवार का चित्रण था—बहुत सुंदर, मोहक एवं चित्ताकर्षक! दूसरे पृष्ठ में चित्रकार ने उसी 'पेंटिंग' के मध्य में एक रेखा खींच रखी थी तथा पार्श्व में उसने लिखा था कि आप इसी एक 'पेंटिंग' में दो अलग-अलग चित्र देख सकते हैं—एक चित्र वन-प्रांतर में सूर्योदय का है और दूसरा चित्र गहन वन में निवास करते वनवासी परिवार का।

चित्रकार ने जिस सुरुचि एवं दक्षता का परिचय देते हुए दो चित्रों को एकाकार किया था, वह, सचमुच, सराहना के योग्य था। उसी सराहना का भाव 'पारस-बेला' के पठनोपरांत सुकवि डॉ. अनिल कुमार पाठक के लिए मन में आया। वस्तुत: दक्ष कवि ने अपने माता-पिता के प्रति काव्यांजलि को जिस कौशल के साथ मातृ-पितृ भक्त-शिरोमणि श्रवण कुमार से संबंधित एक लंबी कविता के साथ जोड़ा है—वह श्लाघनीय है। श्रवण कुमार पर विरचित लंबी कविता 'श्रवण कुमार' 'दिनकर' के कुरुक्षेत्र के षष्ठ सर्ग की भाँति है, जिसके लिए महाकवि ने लिखा था कि 'पूरा-का-पूरा छठा सर्ग···इस काव्य से टूटकर अलग भी जी सकता है।'

'रघुवंश' की रचना को, इसकी विषयवस्तु की महनीयता के सापेक्ष, महाकवि कालिदास ने अपने कवि-कर्म की छोटी सी नौका लेकर विशाल एवं गहरे सागर को पार करने का दुस्साहस बनाया। इसी भाँति महाकवि कबीर ने भी कहा यदि सातों समुद्र स्याही बन जाएँ, समस्त वन लेखनी बन जाय

और सारी धरती कागज का रूप ले ले, फिर भी मुझसे गुरु महिमा नहीं लिखी जाएगी। इस कृति की 'भूमिका' में सुकवि डॉ. अनिल कुमार पाठक ने इन दोनों प्रसंगों का उल्लेख किया है। इसी परिप्रेक्ष्य में अपनी सीमा को स्वीकार करते हुए डॉ. अनिल कुमार पाठक ने माता-पिता से प्राप्त अतुलनीय स्नेह एवं संरक्षण के सापेक्ष उनकी स्मृतियों के प्रति हृदय में उत्पन्न आत्मीय भावों को इस कृति में शब्दों का ताना-बाना पहनाने का एक विनम्र प्रयास मात्र माना है। कवि की यह विनम्रता पाठक उसी प्रकार स्वीकार करता है, जैसे मानसकार तुलसी ने कहा कि उनमें कविता करने का विवेक है ही नहीं, (कवित विवेक एक नहिं मोरे…) तथापि पूरी कृति के पढ़ जाने के बाद डॉ. अनिल कुमार की काव्यात्मक प्रतिभा को सराहनात्मक ढंग से स्वीकारना पड़ता है।

श्रवण कुमार का जैसा चित्रण इस कृति में हुआ है, वह प्रशंसनीय है। इस कविता को तो पाठ्यक्रम में रखकर छात्रों को पढ़ाया जाना चाहिए, ताकि आज के युवक माता-पिता के प्रति अपने कर्तव्यों को समझ सकें तथा उनके प्रति युवा-वर्ग में निरंतर सम्मान-भाव बना रहे।

'पारस-परस' काव्य-खंड में सुकवि ने अपने पूज्य पिता के उस स्वरूप की अनुभूति को काव्य का विषय बनाया है, 'जो सूर्य के समान सभी को आलोकित करनेवाला है तथा जिसके स्पर्श से कुधातु भी स्वर्ण बन जाता है।' यहाँ उल्लेखनीय होगा कि कवि के पिताश्री का नाम श्री पारस नाथ पाठक 'प्रसून' है, जिन्हें घर में कवि द्वारा 'बाबू' कहकर संबोधित किया जाता रहा है। अत: इस काव्य-खंड का नाम 'पारस-परस' अत्यंत सार्थक है।

कवि के पिताश्री सचमुच इस अर्थ में विलक्षण थे कि उन्होंने अपने संपूर्ण परिवेश से एक अनन्य जुड़ाव रखा था। यह जुड़ाव धरती, आकाश चाँद-तारों पशु-पक्षियों से लेकर पेड़-पौधों, पास-पड़ोस और कहाँ-कहाँ था—यह अकथनीय विषय हो जाता है। कवि के ही शब्दों में—

"जल में, थल में, नीलगगन में,
चहुँदिशि सुरभित मलयपवन में,
सूर्य-रश्मि औ' चंद्र-किरन में,
दु:ख में, सुख में, प्रमुदित मन में,

व्याप्त सदा तुम बाबू जी।
कहाँ नहीं तुम बाबू जी॥

हरित धान्य स्वर्णिम बाली में
क्षुधित कृषक, सूनी थाली में,
कोयल-कूक, पुष्प-डाली में,
हर उपवन, उसके माली में,
आप्त सदा तुम बाबू जी।
कहाँ नहीं तुम बाबू जी॥''

इस प्रेममय लगाव का परिणाम यह देखने को मिलता है कि कवि के पूज्य पिताश्री के दिवंगत होते ही संपूर्ण प्रकृति एवं परिवेश में एक अनुभव करने योग्य उदासी छा जाती है। पेड़-पौधे तक आपस में 'पूछा-ताछी' करने लगते हैं तथा ताड़ जाते हैं कि 'लगता है कुछ अनहोनी है।' कवि ने 'बाबू जी अब आते होंगे' शीर्षक कविता में इस स्थिति का अत्यंत प्रभावपूर्ण चित्रण किया है। इस असह्य विछोह की पीड़ा का अनुभव करते हुए पशु-पक्षी एवं पेड़-पौधे तक पूछ उठते हैं—

''पुचकारेगा कौन हमें अब
हमको कौन दुलारेगा?
बातें कौन करेगा हमसे
हमको कौन पुकारेगा?
हमसे क्या अपराध हुआ
साथ छोड़ तुम चले गए?
हम सबके सुख-दु:ख के साथी
बाबू जी तुम कहाँ गए?
बाबू जी तुम कहाँ गए?''

अपनी माताश्री को समर्पित इस काव्य-कृति का 'बेला-स्मृति' नामक खंड भी अत्यंत अप्रतिम एवं श्रेष्ठ बन पड़ा है। यह काव्य-खंड ''ब्रह्मांड की समस्त रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ माँ के ममतामयी आँचल की छाँव में व्यतीत

अतीत पलों की अमर स्मृतियों" को समर्पित है, जिन्हें कवि 'जीने का संबल' मानता है। अपनी स्नेहमयी माँ के माध्यम से कवि उस चिरंतन, शाश्वत 'माँ' का अनुभव करता है, जो देश-काल, धर्म-जाति के विभेदों से परे है। कवि के ही शब्दों में—

"माँ तो केवल माँ होती है,
वह तो बस माँ ही होती है।

तेरी, मेरी हो या उसकी,
काले, गोरे और किसी की,
फर्क कहाँ पड़ता है इससे,
अपना स्वत्व कहाँ खोती है?
माँ तो केवल माँ होती है
वह तो बस माँ ही होती है॥

देश-काल ना जाति-धर्म से,
माँ का नाता हृदय-मर्म से,
किसी नाम से उसे पुकारो
माँ तो सबकी माँ होती है।
माँ तो केवल माँ होती है,
वह तो बस माँ ही होती है॥"

'माँ', सचमुच माँ होती है, उसका स्थान अन्य कोई नहीं ले सकता, जो मन की गहरी बातों को बिना बताए ही सहज भाव से समझ जाती है तथा अपनी संतान के सुखमय जीवन के सुंदर सपनों को सरलता से गढ़ लेती है। उस ममतामयी माँ का जैसा उत्कृष्ट चित्रण कवि की लेखनी से हुआ है—वह अप्रतिम एवं प्रशंसनीय है। माँ के विछोह में कवि जिस पीड़ा के साथ उसकी स्नेहमयी छाँव में व्यतीत किए गए प्रत्येक पल को स्मरण करता है—उसकी अत्यंत सशक्त एवं भावपूर्ण अभिव्यक्ति इस कृति में हुई है, जो नितांत पठनीय है।

इस कृति का अंतिम खंड 'विविधा' है, जहाँ कवि स्वीकार करता है कि 'जीवन में सभी रिश्ते महत्त्वपूर्ण हैं।' तथापि उसकी मान्यता है कि माता-पिता का रिश्ता सभी रिश्तों से बढ़कर है। यह स्नेह-बंधन ''सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक है'' तथा बिना माता-पिता के जीवन में सबकुछ सूना तथा रीता है। इस खंड में 'यादें… ' एक लंबी कविता संकलित है, जिसमें विगत सुधियों के माध्यम से कवि ने पूज्य माता-पिता को भाव-भीनी भावांजलि दी है। प्रवाहपूर्ण भाषा में रचित सशक्त बिंबों को उकेरती यह एक अत्यंत भावपूर्ण कविता है, जो पाठकों पर अपना गहरा प्रभाव छोड़ती है।

समग्रतः सहज-भाषा शैली, उपयुक्त शिल्प-विधान तथा प्रांजल भावाभिव्यक्ति के साथ पारस-बेला एक उत्कृष्ट काव्य-कृति है, जिसकी गणना श्रेष्ठ शोक-काव्य में की जा सकती है।

''दुःख ही जीवन की कथा रही। क्या कहूँ आज जो नहीं कही?'' कहनेवाले महाप्राण 'निराला' ने अपनी प्रिय पुत्री के विछोह में जब 'सरोज-स्मृति' की रचना की तो हृदय की समस्त वेदना फूट पड़ी—

''कन्ये! मैं पिता निरर्थक था।
तेरे हित कुछ भी कर न सका।''

निराला का यह अश्रुसिक्त शोक-काव्य करुणा-प्रधान है। वेदना में मुक्ति ढूँढ़नेवाले निराला ने स्वीकार किया है, 'जिया हूँ हजार मरण। पाई तब चरण-शरण।'

यहाँ अंग्रेजी के प्रतिष्ठित कवि 'टेनीसन' के सुप्रसिद्ध शोक-गीत 'इन मेमोरियम का उल्लेख भी प्रासंगिक प्रतीत होता है। इस कृति की रचना सुकवि 'टेनीसन' ने अपने प्रिय मित्र 'आर्थर हैलम' के असामयिक निधन पर की थी। शोक-विह्वल कवि वेदना के भावावेश में पूरी सृष्टि-व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न खींचता है, तथापि अंत में वह स्वीकार करता है कि ईश्वर की इच्छा ही सर्वोपरि है। तब वह विश्वासपूर्ण स्वर से एक ईश्वर, एक नियम, एक तत्त्व (One God, One Law, One Element) को स्वीकार कर अपनी वेदना का समाधान पा लेता है। समालोचकों ने इस कृति को कवि की 'अनास्था से आस्था तक' की यात्रा बताया है।

'पारस-बेला' आरंभ से अंत तक आस्थापूर्ण है, जिसमें माता-पिता के प्रति आदर-भाव एवं उनकी महत्ता को लेकर जो जीवन-दर्शन पल्लवित हुआ है, वह नितांत सकारात्मक रूप से भारतीय है। श्रवण कुमार की आदर्श-गाथा के साथ कृति का समारंभ इसे भारतीय संस्कारों की उस भूमि से सहज ही जोड़ देता है, जहाँ यह अवधारणा सदियों से प्रचलित है कि माता-पिता के कदमों में ही स्वर्ग है और उनकी वंदना करना समस्त तीर्थाटनों का पुण्य-फल प्राप्त करना है।

आशा है, कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से इस श्रेष्ठ कृति का सर्वत्र स्वागत एवं समादर होगा।

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ!

—डॉ. (शंभुनाथ)

पूर्व कार्यकारी अध्यक्ष,
उ.प्र. हिंदी संस्थान, लखनऊ

1/60 विशालखंड
गोमतीनगर, लखनऊ

भूमिका

मानव-जीवन के संदर्भ में माता-पिता का स्थान सर्वोपरि है। संतान के जीवन के प्रारंभिक क्षणों से ही यह संबंध बन जाता है, जो जीवनपर्यंत चलता रहता है। मानव-जीवन के लिए माता-पिता अपरिहार्य एवं अनिवार्य हैं और इनके बिना जीवन अकल्पनीय है। जीवन में अत्यंत आत्मीय एवं निकटस्थ होने के बाद भी माता-पिता जैसे पावन व अनुपम चरित्र के विषय में कुछ कहना अत्यंत दुरूह एवं दुष्कर कार्य है। वैसे भी जब महान् चरितों के बारे में स्वनामधन्य महाकवियों, संतों ने कुछ कहने में असमर्थता व्यक्त की है तो मेरी सामर्थ्य कहाँ कि मैं कोई टिप्पणी कर सकूँ। रघुवंश महाकाव्य की रचना के समय महाकवि कालिदास ने इसके प्रारंभ में ही कहा है कि—

"क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्॥"

कहाँ तो परमप्रतापी सूर्यवंशी राजा और कहाँ सीमित ज्ञान एवं क्षुद्र बुद्धिवाला मैं कालिदास, दोनों में कोई साम्य नहीं। मेरा यह प्रयास किसी दुस्साहसी व्यक्ति द्वारा छोटी सी नौका से विशाल एवं गहरे सागर को पार करने की मूर्खतापूर्ण चेष्टा जैसा है।

इसी तरह संत कबीरदास ने गुरु की महिमा का वर्णन करने में अपनी असमर्थता इस प्रकार व्यक्त की है—

"सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब बनराय।
सात समुद की मसि करूँ, गुरुगुन लिखा न जाय॥"

इसीलिए मेरे मन में अपनी असमर्थता के साथ ही यह अंतर्द्वंद्व भी चल

रहा है कि आखिर माता-पिता जैसे व्यापक व्यक्तित्व व अद्वितीय चरित के बारे में क्या कहूँ? कैसे कहूँ? वैसे तो सूर्य को रोशनी के लिए दीपक दिखाना उपहास का विषय बनना है, किंतु उसी क्षण यह भी लगता है कि आखिर सूर्य की पूजा के लिए तो हम दीपक दिखाते ही हैं फिर माता-पिता की स्मृतियों को अभिव्यक्ति प्रदान कर उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने में संकोच कैसा? इसी के साथ यह भाव भी उद्भूत हो रहा है कि क्या माता-पिता के बारे में कुछ कहने के लिए किसी भूमिका की आवश्यकता है? कदाचित् नहीं। माता-पिता के आत्मीय स्नेह व आशीर्वाद की छाया में हमने जीवन के कई पड़ाव पार किए हैं। यद्यपि आज वे स्थूल रूप में हमारे साथ नहीं हैं, फिर भी (सूक्ष्म रूप में) वे हर पल हमारे पास विद्यमान हैं। हालाँकि, हमारे लिए उनका स्थूल रूप उसी प्रकार से अपरिहार्य महत्ता का है, जैसे भक्ति में भक्त के लिए भगवान् का सगुण या साकार स्वरूप होता है। मैंने दिन-प्रतिदिन इनके अभाव का अनुभव करते हुए (इनकी) अतीत की स्मृतियों को; जो मन व हृदय में आत्मीय भावों के रूप में प्रस्फुटित हुईं; शब्दों का ताना-बाना पहनाने का प्रयास किया है। माता-पिता से प्राप्त स्नेह व संरक्षण अतुलनीय है। कदाचित् उनकी महत्ता को उनके जीवनकाल में अधिक नहीं समझ पाया, किंतु उनके न रहने पर बार-बार यह लगता है कि मैं केवल अपने लिए ही जिया, जबकि माता-पिता मेरे लिए जिए। ऐसी बात सभी माता-पिता के बारे में पूर्णतः सही है कि वे अपनी संतानों के लिए ही जीते हैं, परंतु यह बात उनकी संतानों के संदर्भ में भी सही होगी या नहीं, मैं इस पर कोई टिप्पणी नहीं कर सकता, किंतु मेरे मनो मस्तिष्क में तो आज भी पश्चात्ताप की पीड़ा व्याप्त है, जिसके प्रायश्चित्त का कोई मार्ग सुझाई नहीं पड़ता। इसी संदर्भ में कहीं-न-कहीं मुझे अपने परम आदर्श पौराणिक चरित श्रवण कुमार से इस बात के लिए ईर्ष्या भी होती है कि मैं उन जैसा क्यों नहीं बन पाया? जहाँ श्रवण कुमार जी एक आदर्श मातृ-पितृ-भक्त के रूप में महानतम हैं, वहीं उनके माता-पिता भी अप्रतिम हैं। श्रवण कुमार की कर्तव्यनिष्ठा, अतुलनीय सेवा-समर्पण के प्रति मेरी हार्दिक श्रद्धांजलि दो गीतों के रूप में है। पहला गीत है—''सच में मैं नहिं श्रवण कुमार'' इस गीत के माध्यम से यह मेरी

आत्मस्वीकारोक्ति है कि मैं श्रवण कुमार का पासंग भी नहीं बन सका, जिसका पश्चात्ताप आजीवन रहेगा। दूसरा गीत "श्रवण कुमार कहाँ अब कोई…" में वर्णित कथा श्रवण कुमार जी के पावन-चरित के स्मरण का प्रयास है। निश्चित रूप से मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि उन जैसे चरित प्रत्येक परिवार में पैदा हों, परंतु वर्तमान में मानवीय मूल्यों पर आसन्न संकट एवं घटाटोप अंधकार को देखते हुए मन कभी-कभी शंकाग्रस्त हो जाता है फिर भी यह विश्वास रखते हुए 'Every cloud has a silver lining' पूर्णतः निराश भी नहीं हूँ। श्रवण कुमार जैसे पावन चरित की संभावना समाज में सदैव बनी रहनी चाहिए, क्योंकि यही दृढविश्वास, कि धरती कभी भी ऐसी संतानों से पूरी तरह खाली नहीं हो सकती है, हमें अँधेरे में उजाले की किरण बनने के लिए प्रेरित करता रहेगा।

माई (माता जी) एवं बाबू (पिता जी) के प्रति समर्पित विभिन्न गीत वस्तुतः उनके प्रति मेरी भावपूर्ण श्रद्धांजलि है। प्रत्येक रचना श्रद्धा सुमन रूप है, जो उनके चरण-कमलों में अश्रुपूरित नेत्रों के सहभाव से समर्पित है। सामान्य रूप से तो ये अक्षरों, शब्दों, वाक्यों के संयोजन प्रतीत होंगे, परंतु यह भोगा हुआ यथार्थ है, जिया हुआ सच है। पानी में भीगने का दर्द पका हुआ घड़ा नहीं, कच्चा घड़ा ही समझ सकता है, क्योंकि पानी की बूँदें उसके अस्तित्व के लिए संकट हैं। माता-पिता का वियोग मकान की छत ढहने से भी अधिक दुःखदायी है और मैंने इस पीड़ा को सहा है।

कदाचित् इन गीतों से यह आभास हो कि ये निजता के गीत हैं और केवल मेरे माता-पिता तक ही सीमित हैं, वास्तव में ऐसा नहीं है। मेरे भाव मात्र उन्हीं तक नहीं हैं। मैं इस सृष्टि के हर माता-पिता में उन्हें देखता हूँ और इसी तरह उनमें सृष्टि के हर माता-पिता को। इसीलिए इस संग्रह के गीतों द्वारा अर्पित यह श्रद्धांजलि सृष्टि के प्रत्येक माता-पिता के प्रति है। मैं ऐसी सभी संतानों के प्रति समानुभूति भी रखता हूँ व वैसी ही उम्मीद मैं भी उनसे कर सकता हूँ कि मेरे प्रति भी उनकी समानुभूति होगी, तभी वे मेरी इस श्रद्धांजलि को वास्तविक रूप से आत्मसात् कर सकेंगे।

मैं प्रस्तुत काव्य-संग्रह को वर्तमान स्वरूप प्रदान करने हेतु डॉ. शंभुनाथ,

डॉ. कैलाश देवी सिंह, डॉ. मनीष पांडेय, श्री सुशील कुमार अवस्थी की सहृदयता के लिए हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

"जिन मातु-पिता की सेवा की, तिन तीरथ स्नान कियो न कियो···' कवि दीपक की इन गुरुगंभीर एवं सार्थक पंक्तियों के साथ अपने वक्तव्य को विराम देते हुए 'पारस-बेला' कृति सभी सुधीजनों को उनके नीर-क्षीर विवेकार्थ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

मातृ-पितृ वंदन सहित,

गुरु पूर्णिमा (2016 ई.)

—डॉ. अनिल कुमार पाठक
लखनऊ

अनुक्रम

शुभाशंसा 7

प्रस्तावना 15

भूमिका 21

वंदन

1. मैं गीत उन्हीं के गाता हूँ 31
2. मात-पिता बिन सब रीता है 33

श्रवण

3. सच में मैं नहिं श्रवण कुमार 37
4. श्रवण कुमार कहाँ अब कोई··· 39

पारस-परस

5. नया सवेरा, नई रोशनी लाए मेरे बाबूजी 51
6. कोई मुझसे नहीं कहे, 'बाबूजी' मेरे नहीं रहे 53
7. मुझको कोई बतलाए तो 54
8. छोड़ गए क्यूँ हमें अकेले 55
9. बाबूजी अब करो न देर 57

10. बाबूजी मेरे आएँगे 59
11. बाबू तेरे ही गम में 61
12. अपने प्यारे बाबूजी 62
13. बाबूजी मेरे रुके नहीं 63
14. बाबू मेरे कहते रहे 64
15. आशीष-स्नेह से आँचल मेरा भरा हुआ 65
16. क्या भूल गए? जो याद करें 66
17. बाबूजी चलते चले गए 67
18. कवलित काल नहीं कर सकता 68
19. सबसे न्यारे बाबूजी 70
20. बस तेरे खो जाने से 72
21. रोम-रोम में कण-कण में 74
22. बाँध प्रीति के धागे सबसे 76
23. बाबूजी को याद करें 78
24. आखिर कैसा यह नव प्रभात 80
25. कहाँ नहीं तुम बाबूजी 82
26. साथ भला क्यूँ छोड़ गए 84
27. आखिर ऐसा वादा क्यूँ 86
28. बाबूजी अब आते होंगे··· 88

बेला-स्मृति

29. माँ तो केवल माँ होती है 97
30. सबसे न्यारी माई है 100
31. मेरी माँ 101

32. ममता की मूरत मेरी माँ 102
33. माँ है तेरे रूप अनेक 104
34. जननी जबसे तुमसे बिछुड़े 106
35. माँ 107
36. गाँव गया था माँ के पास 109
37. आखिर माँ क्यूँ सब सहती है 111
38. माँ ही है अनमोल रतन 114
39. माँ से प्यारा कौन जगत् में 115
40. माँ बहुत पुराना नाता है 116

विविधा

41. यादें··· 121

वंदन

प्रभु के उन दो अनुपम एवं अद्वितीय
रूपों का, जो माता-पिता के
रूप में इस जगत् में
विद्यमान हैं।

मात-पिता बिन सब रीता है

यह जीवन, उनका वरदान,
मेरे लिए वही भगवान्,
पिता राम, माई सीता है।
मात-पिता बिन सब रीता है॥

त्याग, तपस्या के पर्याय,
नभ सम पिता अवनि सम माय,
इक रामायण, इक गीता है।
मात-पिता बिन सब रीता है॥

जब तक थे ये साथ हमारे,
कभी नहीं किसी से हारे,
सबकुछ हमने ही जीता है।
मात-पिता बिन सब रीता है॥

जबसे छूटा उनका साथ,
हुआ अभागा और अनाथ,
दु:ख में ही हर पल बीता है।
मात-पिता बिन सब रीता है॥

जीवन से खुशियाँ सब ओझल,
जीवन लगता कितना बोझल,
गंगाजल भी अब तीता है।
मात-पिता बिन सब रीता है॥

□

श्रवण

मातृ-पितृ-भक्त-शिरोमणि श्रवण कुमार
के मोक्षदायक पावन-चरित का, जो
कलुष-हृदय को भी निर्मल
बना देता है।

श्रवण कुमार कहाँ अब कोई...

कथा सुन रहा बचपन से
मैं, भगवद् औ' गुरुभक्तों की।
आदर्शों के रक्षक, पावन,
मातु-पिता के भक्तों की॥

मिलते हैं हर देश-काल में,
महाचरित उत्तम गुण के।
भरा त्याग, बलिदान, समर्पण,
खरे सदा अपने प्रण के॥

भारत की पावन माटी में,
सेवा-भक्ति महत्तम है।
प्राणों की आहुति दे देना,
सेवा यह सर्वोत्तम है॥

नर सेवा नारायण सेवा,
परहित ही है महाधर्म।
ज्ञान, कर्म औ' भक्ति मार्ग,
तीनों का ही यही मर्म॥

बिखरे केश, रक्त से लथपथ,
धूल-धूसरित उनकी काया।
तुंबा का जल गिरा-पड़ा था,
समझ नहीं नृप के कुछ आया॥

बोला बालक, "मुझे बता दो,
राजन मेरा क्या अपराध?
मात-पिता दुर्बल औ' अंधे,
श्रद्धा मेरी उनमें अगाध॥

जल लेने मैं आया राजन्
उनको लगी हुई है प्यास।
कौन करेगा पुण्य-कर्म यह,
मैं ही तो हूँ उनकी आस॥

मृत्यु प्रतीक्षारत है मेरी,
इसका मुझे नहीं है क्लेश।
पर पहुँचेगी मात-पिता को
इससे असहनीय नृप! ठेस॥

अब आगे उनका क्या होगा,
सपने पूर्ण करेगा कौन?
धन के सारे संगी-साथी,
अपना उन्हें कहेगा कौन?

करते होंगे सतत प्रतीक्षा,
वन में, मेरे मात-पिता।
इतनी कृपा करो तुम राजन,
मैं तुमको दे रहा पता॥

समाचार उनको यह देना,
कहना उनका पुत्र अभागा।
मात-पिता के काम न आया,
जीवन उसका पूरा नागा॥

राजन जाकर प्यास बुझा दो,
दृष्टिहीन उन वृद्धों की।
दूर करें दुःख इस वियोग का,
करूँ अर्चना सिद्धों की॥

निरपराध खो रहा प्राण मैं,
शेष नहीं अब कोई आस।
पूर्ण हुआ संकल्प न मेरा,
होंगे माता-पिता निराश॥

मात-पिता की बची यात्रा,
अब कैसे होगी नृप पूरी।
होनी तो अनहोनी हो गई
इच्छा तो यह रही अधूरी॥''

मन-ही-मन में क्षमा माँगकर,
किया श्रवण ने जीवन-त्याग।
पर इस जग को बता गए वे,
मात-पिता के प्रति अनुराग॥

हुए शोक से व्याकुल दशरथ,
पहुँचे फिर सरयू के तीर।
सोच घटित वह, दुःखी निरंतर,
बढ़ने लगी हृदय की पीर॥

तुंबा में जल भरकर राजन,
पहुँचे मात-पिता के पास।
सोच रहे चिंताकुल दोनों,
लेकर लंबी गहरी श्वास॥

रुँधे कंठ से दुःखमय स्वर में,
वर्णित निज अपराध किया।
उन असहाय, अभागों को तो
जीते-जी निष्प्राण किया॥

मौन हो गई वाणी कुछ क्षण,
व्याकुल मन से फिर वे बोले।
हमें श्रवण के पास ले चलो,
छोड़ गया क्यूँ हमें अकेले॥

काँवर अपने कंधे पर ले,
चले वहाँ दशरथ भूपाल।
भूल गए निज अहं, गर्व,
ऐश्वर्य, झुका था उनका भाल॥

श्रवण कर रहे स्वर्गारोहण,
दिव्य-रूप कर धारण।
मातु-पिता की सेवा का फल,
उनकी भक्ति, समर्पण॥

''तात-मात! दें क्षमा मुझे,
असमर्थ रहा लाने में जल।
फिर भी सद्गति मिली मुझे,
ये है तेरी करुणा का फल॥

पारस-परस

अनुभूति पिता के उस स्वरूप की,
जो सूर्य के समान सभी को
आलोकित करनेवाला है,
जिसके स्पर्श मात्र से
कुधातु भी स्वर्ण
बन जाती है।

नया सवेरा, नई रोशनी लाए मेरे बाबूजी

पारस-परस कुधातु सुहाए,
ऐसे मेरे बाबूजी।
नया सवेरा, नई रोशनी,
लाए मेरे बाबूजी॥

हम मिट्टी के लोंदों को,
रूप अनोखा दे डाला।
अँकुराते जो मुरझाया,
जीवन उसको दे डाला।

मरुथल में जीवन-धारा,
बन, आए मेरे बाबूजी।
नया सवेरा, नई रोशनी,
लाए मेरे बाबूजी॥

अंधकार से दूर, ज्योतिमय
सत्पथ दिखलाने वाले।
कठिन राह के दिग्दर्शक,
मंजिल तक पहुँचाने वाले।

हार कभी ना मानी, ऐसे
योगी मेरे बाबूजी।
नया सवेरा, नई रोशनी,
लाए मेरे बाबूजी॥

केवल पिता नहीं वे मेरे,
पथदर्शक औ' मीत हैं।
इन अधरों की वाणी हैं वे,
ये उनके ही गीत हैं।

ज्ञान और विज्ञान-प्रवाहक,
प्यारे मेरे बाबूजी।
नया सवेरा, नई रोशनी,
लाए मेरे बाबूजी॥

□

समझ न आए, दिल घबराए,
हम हैं दुखिया बाबूजी॥

इतनी जल्दी ही जाना था,
हम सबको यूँ ठुकराना था।
इतना नेह-दुलार दिया क्यूँ,
जीवन भर जब तड़पाना था।
गया चैन, सुख, चली गई
नयनों की निंदिया बाबूजी।
समझ न आए, दिल घबराए,
हम हैं दुखिया बाबूजी॥

□

बाबूजी अब करो न देर

सभी आत्मजन सिसक रहे,
कहने से कुछ हिचक रहे।
सुध-बुध खोकर माता मेरी,
भैया-बहना बिलख रहे।

क्यूँ चुप हुए? मौन अब तोड़ो,
सुन इस पीड़ित मन की टेर।
बाबूजी अब करो न देर॥

अपना दोष समझ ना पाए,
यमदूतों से उलझ न पाए।
क्रूर वक्त की यह बेईमानी,
हम सब कुछ भी समझ न पाए।

आर्त-हृदय की पीड़ा हर लो,
दूर करो कष्टों के ढेर।
बाबूजी अब करो न देर॥

तुम युग-पुरुष, अमर सरि धारा,
कालजयी व्यक्तित्व तुम्हारा।
प्रबल आत्मबल से आपूरित,
है अखंड विश्वास हमारा।

कवलित काल करेगा कैसे,
बन जाएगा वह तव चेर।
बाबूजी अब करो न देर॥

आखिर कैसी यह लाचारी,
सोच रही अब दुनिया सारी।
सबके प्रेरक, पंथ-प्रदर्शक,
हम सब हैं तेरे आभारी।

कर्मयोग के पोषक बाबू,
कैसे कहूँ किस्मत का फेर।
बाबूजी अब करो न देर॥

□

बाबूजी मेरे आएँगे

सुन मेरी सिसकी औ' तड़पन,
बहते आँसू रुकती धड़कन।
वे खुद ही ना रुक पाएँगे,
बाबूजी मेरे आएँगे॥

खोली जबसे आँखें हमने,
साकार हुए सारे सपने।
तो कैसे अब ठुकराएँगे?
बाबूजी मेरे आएँगे॥

अपना भविष्य करके स्वाहा,
सपने में भी पर-हित चाहा।
अब निष्ठुर क्यों हो जाएँगे?
बाबूजी मेरे आएँगे॥

विश्वास सदा मेरा उन पर,
हैं कृपालु वे हर पल, सब पर।
भला हमें क्यूँ तड़पाएँगे?
बाबूजी मेरे आएँगे॥

बेचैन हृदय की करुण-कथा,
इस पीड़ित मन की मर्म-व्यथा।
सुन मर्माहत हो जाएँगे,
बाबूजी मेरे आएँगे॥

□

बाबू तेरे ही गम में

बाबू तेरे ही गम में, आमों के बौर नहीं आये,
पतझड़ ही चहुँओर हुआ, नहिं बसंत कहीं बगराये।
गैया रोये, मैया रोये,
भैया रोयें, रोयें बहना।
बेटा-बेटी, नाती-पोते,
है सूना-सूना घर-अँगना।
बिलख रहे हैं बंधु-बांधव उनकी पीड़ा सही न जाये।
बाबू तेरे ही गम में, आमों के बौर नहीं आये॥
सबकुछ दुःखमय हुआ यहाँ
वह प्राण-तत्त्व था, चला गया।
दिखे चतुर्दिक् यह परिवर्तन,
वह सार-तत्त्व तो चला गया।
रीता सा है अपना जीवन, कैसे अब फिर भर पाये।
बाबू तेरे ही गम में, आमों के बौर नहीं आये॥
हे प्राण-तत्त्व! हे सार-तत्त्व,
तुम जीवन थे इस काया के।
थे सूत्रधार! तुम कर्णधार,
अपनी इस सारी माया के॥
मुझसे यह सँभल नहीं पाती, राह कौन अब दिखलाये।
बाबू तेरे ही गम में, आमों के बौर नहीं आये॥

□

अपने प्यारे बाबूजी

तकलीफों के बोझ तले, सूना आँगन, दुखिया बचपन।
हर पल पाई थी पीड़ा, हर पल पाई थी अड़चन।
फिर भी हँसते रहे सदा, थे सबसे न्यारे बाबूजी।
अपने प्यारे बाबूजी॥

कभी मिला विश्वासघात, कभी रुकावट औ' धोखा।
काँटों भरी राह थी उनकी, सबने रोका, सबने टोका।
फिर भी चलते रहे सदा, आँखों के तारे बाबूजी।
अपने प्यारे बाबूजी॥

निर्भीक सदा, वे डिगे नहीं, झेले थे कष्टों के रेले।
झंझावातों में जीवन के छूट गए सारे मेले।
फिर भी बढ़ते रहे सदा, हम सबके प्यारे बाबूजी।
अपने प्यारे बाबूजी॥

सर्दी-गरमी, धूप-छाँव में, बिन संगी, बिन साथी के।
टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडी पर, बिना सहारे, लाठी के।
फिर भी चलते रहे सदा, थे कभी न हारे बाबूजी।
अपने प्यारे बाबूजी॥

□

बाबूजी मेरे रुके नहीं

उन्हें पुकारा जिसने भी, रुक गए उसी की खातिर।
ममता, करुणा और नेह भरा था उनमें जो आखिर।
दु:खियों का दु:ख अपनाकर भी, कभी दु:खी वे दिखे नहीं।
बाबूजी मेरे रुके नहीं॥

छोड़ गए जो साथ, राह में कपट और लालचवश।
सोचा वे भी रुक जाएँगे डरकर, होंगे परवश।
चले सदा निष्काम भाव से, इन बातों से डिगे नहीं।
बाबूजी मेरे रुके नहीं॥

राजदंड व सत्ता के, फरमानों से कभी ना डरकर।
राजमहल की अनुकंपा से, अपने कोठार न भरकर।
असहज, विषम क्षणों में भी, होकर निराश वे झुके नहीं।
बाबूजी मेरे रुके नहीं॥

मानवता के पोषक थे, वे रक्षक पीड़ित जन के।
किया समर्पित जीवन परहित, सेवक सच्चा बन के।
उर से स्मृतियाँ मेरे, ऐसी विभूति कि मिटे नहीं।
बाबूजी मेरे रुके नहीं॥

□

बाबू मेरे कहते रहे

लाख कोशिश कर ले कोई, झूठ सच होता नहीं।
सच रहेगा सच, कभी निज सत्त्व सच खोता नहीं।
पक्षधर बन सत्य के, वे एकला चलते रहे।
साथ सच का दो सदा, बाबू मेरे कहते रहे॥

कालिमा बादल की, सूरज को छुपा सकती नहीं।
आँधियाँ गिरिराज का, मस्तक झुका सकती नहीं।
सत्य की लेकर पताका, निडर वे चलते रहे।
साथ सच का दो सदा, बाबू मेरे कहते रहे॥

वे गिरे, गिरकर उठे, पर कभी भी ना झुके।
कितने बाधा-विघ्न आए, पर कभी भी ना रुके।
योद्धा की तरह हो निर्भीक, वे लड़ते रहे।
साथ सच का दो सदा, बाबू मेरे कहते रहे॥

सच कभी छोड़ा नहीं, चाहे अकेले हो गए।
सच की खातिर राह में, कष्टों के मेले हो गए।
सन्मार्ग पर निष्काम योगी की तरह चलते रहे।
साथ सच का दो सदा, बाबू मेरे कहते रहे॥

□

आशीष-स्नेह से आँचल मेरा भरा हुआ

कभी न खोना धैर्य पुत्र! तुम,
मेरे जैसा रखना साहस।
घबराकर बाधाओं से तुम,
मत हो जाना पथ से वापस।
सूक्ष्म रूप में पास सदा मैं खड़ा हुआ,
आशीष-स्नेह से आँचल मेरा भरा हुआ॥

विरथ भले हो जाना चाहे,
कोई कहे तुम्हें पदगामी।
पर बनना आदर्श सभी का,
मुझसा सच्चरित्र, सद्‌गामी।
राह दिखाऊँगा, जिस पर मैं बड़ा हुआ,
आशीष-स्नेह से आँचल मेरा भरा हुआ॥

ज्ञान-ज्योति से तिमिर हटेगा,
ध्वज लहरेगा सच्चाई का,
अहंकार मत करना 'स्व' का।
नश्वर, मिथ्या ऊँचाई का।
जग देखेगा तुम्हें शिखर पर चढ़ा हुआ,
आशीष स्नेह से आँचल मेरा भरा हुआ॥

□

क्या भूल गए? जो याद करें

बाबूजी को 'याद करें'
क्या भूल गए? जो 'याद करें'।
हर पल, बीत गया जो कल,
आज तथा आगामी कल।
भूले नहीं कभी जब उनको
तब कैसा? यह 'याद करें'।
बाबूजी को 'याद करें'।
क्या भूल गए? जो 'याद करें॥

रक्त शिराओं में है उनका,
श्वास-सूत्र प्रत्येक, उन्हीं का।
सब केवल औ' केवल उनका,
तब क्यूँ? कलरव-नाद करें।
बाबूजी को 'याद करें',
क्या भूल गए? जो 'याद करें'॥

जो कुछ भी है, इस तन-मन में
बाहर-भीतर, घर-आँगन में।
उनसे ही संबद्ध सभी कुछ,
तब किससे फरियाद करें?
बाबूजी को 'याद करें',
क्या भूल गए जो 'याद करें'॥

□

बाबूजी चलते चले गए

काँटे-कुशाग्र, कंकड़-पत्थर,
कितने घुमाव, कितने चक्कर।
तूफान भरे, ऊँचे-नीचे
जल प्लावित, बर्फीले पथ पर।
दुख:दायी इन राहों में भी,
बाबूजी चलते चले गए।
बाबूजी चलते चले गए॥

उत्साह, उमंग भरी भाषा,
मंजिल पाने की अभिलाषा।
अँधियारी रातें रहीं भले,
पर त्यागी नहीं कभी आशा।
बिन विरत हुए नैतिकता से,
सत्पथ पर बढ़ते चले गए।
बाबूजी चलते चले गए॥

पर-हित में सबकुछ त्याग दिया,
बेसुर को सुमधुर राग दिया।
ममता-समता, बिन भेद-भाव,
मरुथल को भी नव बाग दिया।
बन मानवता के दृढसंबल,
सबका हित करते चले गए।
बाबूजी चलते चले गए॥

□.

कवलित काल नहीं कर सकता

माँ ने प्रमुदित हो जना जिसे,
कुल दीपक घर में आया।
पाकर विछोह निज मातु-पिता का,
वह किसलय कुम्हलाया॥

संघर्षों में पला-बढ़ा वह,
तनिक नहीं घबराया।
श्रेयस्कर कर्तव्य मात्र है,
कभी नहीं भरमाया॥

मातु-पिता की अदृश कृपा
की, पाकर शीतल छाया।
बना स्वावलंबी बचपन में
सत्पथ को अपनाया॥

मिला कंध-से-कंध चला वह,
सबको ही अपनाया।
पिछड़े-बिछुड़े और अकिंचन,
सबको गले लगाया॥

दृढप्रतिज्ञ औ' ललक प्रगति की,
जो चाहा सो पाया।
कुछ भी नहीं असंभव जग में,
करके यह दिखलाया॥

कवलित काल नहीं कर सकता,
यश जो तूने पाया।
कालजयी, युगपुरुष कृपा
कर, नेह-प्रीति की छाया॥

□

सबसे न्यारे बाबूजी

जीवन की ऊषा बेला में,
हुई नियति अभिशप्त।
दुःख-पीड़ा संघर्षों से,
हो कष्टों से परितप्त।
अदृश कृपा पा मातु-पिता की,
पथ पर ज्यों ऋषिसप्त।
विकट डगर पर कभी रुके ना,
मेरे प्यारे बाबूजी॥
सबसे न्यारे बाबूजी।

जीवन पथ अनजाना जिसमें,
संग कोई ना साथी।
एकाकी, पदगामी संग में
कोई अश्व न हाथी।
चहुँदिशि फैल रहा अँधियारा,
ना दीया ना बाती।
निशा-काल पर कभी डरे ना,
मेरे प्यारे बाबूजी।
सबसे न्यारे बाबूजी॥

बस तेरे खो जाने से

तेरे जाने से 'बाबूजी'
बस तेरे ही जाने से।
सबकुछ सूना, रीता, फीका,
बस तेरे खो जाने से।

गिरा पहाड़ दुःखों का सिर पर,
इक पल कटना भारी है।
दे दो पता मुझे भी अपना,
आने की तैयारी है।
तुम्हें पता हो या ना हो,
हम विलख रहे अनजाने से।
सबकुछ सूना, रीता, फीका,
बस तेरे खो जाने से।

कहता कौन? फर्क नहीं पड़ता,
रहने या न रहने से।
कोई आकर पूछे कैसा
लगता है छत ढहने से।
पीर-हृदय की दूर न होगी,
केवल मन बहलाने से।
सबकुछ सूना, रीता, फीका,
बस तेरे खो जाने से।

रोम-रोम में कण-कण में

रोम-रोम में कण-कण में,
बाबूजी मेरे समाए हैं।
सबसे बड़ा धर्म है सेवा,
सीख यही ले आए हैं।

नश्वर काया, झूठी माया,
आखिर मन भरमाया क्यूँ।
मानुष तो पानी का बुल्ला,
फिर इतना बौराया क्यूँ।

क्षणभंगुर जीवन के मद में,
क्यूँ झूठे गदराए हैं,
सबसे बड़ा धर्म है सेवा,
सीख यही ले आए हैं।

लोभ-मोह की ओढ़ चुनरिया,
आत्मस्वरूप छिपाया क्यूँ।
रात-दिवस लिप्सा में डूबे,
जीवन व्यर्थ गँवाया क्यूँ।

बाँध प्रीति के धागे सबसे

बाँध प्रीति के धागे सबसे,
मत बन तू अनजाना।
'बाबूजी' का ध्येय यही था,
सत्यमार्ग दिखलाना।

मानव के संग मानव का,
व्यवहार बना है ऐसा।
तेरी जाति-धर्म क्या भाई?
तेरा रंग है कैसा?
मुझसे भिन्न तुम्हारी भाषा,
देश-वेश भी कैसा?
हैं अभिन्न जब मूल रूप में,
देख न ताना-बाना।
बाँध प्रीति के धागे सबसे,
मत बन तू अनजाना।
बाबूजी का ध्येय यही था,
सत्यमार्ग दिखलाना॥

मानवता के महासिंधु में,
पग-पग पर क्यों भँवरें?

बाबूजी को याद करें

बाबूजी को याद करें हम,
हर पल उनको याद करें।

कालचक्र ये चलता जाए,
कुछ बिछुड़े, कुछ मिलता जाए।
कुछ टूटे, कुछ जुड़ता जाए,
कुछ गिरता कुछ बनता जाए।
पर अपनी दुनिया में सबकुछ,
केवल-केवल मिटता जाए।
दुःख के तूफां में ही उलझा,
कैसे जीवन आबाद करें।
बाबूजी को याद करें हम,
हर पल उनको याद करें॥

तेरी गरिमा औ' मर्यादा,
जीवन कितना सीधा-सादा।
दृढप्रतिज्ञ औ' अडिग इरादा,
मिला नेह हमको भी ज्यादा।
जबसे छूटा साथ तुम्हारा,
बनकर रह गए केवल प्यादा।

घोर निराशा, रीती आशा,
किससे अब फरियाद करें।
बाबूजी को याद करें हम,
हर पल उनको याद करें॥

त्याग, समर्पण और प्रतिज्ञा
तेरी वह प्रतिभामय प्रज्ञा।
स्थितप्रज्ञ तुम्हारी संज्ञा,
नहीं कर सकूँ कभी अवज्ञा।
तुम प्रेरक, आदर्श हमारे,
करता फिर से आज प्रतिज्ञा।
बाबूजी संदेश तुम्हारे
चहुँदिशि गूँजें, नाद करें।
बाबूजी को याद करें हम,
हर पल उनको याद करें॥

□

आखिर कैसा यह नव प्रभात

अक्षय्य नेह, माँ का दुलार,
पा न सका जो पितृ-प्यार।
आखिर कैसा यह नव प्रभात,
लाया संग अपने काल रात॥

हँसता बचपन बिखर गया,
भाग्य क्रूर बन बिफर गया।
सूखी रोटी भी कठिन हुई,
मिलना था जब दूध-भात।
आखिर कैसा यह नव प्रभात
लाया संग अपने काल रात॥

नित संघर्षों में पले-बढ़े,
स्वगढ़ा, वृत्तिनग स्वयं चढ़े।
पग-पग पर उनके जीवन में,
छोड़ गए अपने ही साथ।
आखिर कैसा यह नव प्रभात,
लाया संग अपने काल रात॥

साथ भला क्यूँ छोड़ गए

छोड़ गए क्यूँ साथ हमारा,
साथ हमारा छोड़ गए?
हम सब हुए अनाथ पिताजी,
साथ भला क्यूँ छोड़ गए?

भोलापन जो सबको भाए,
सबके लिए खुशी जो लाए।
प्रमुदित पुष्पों सा वह मुखड़ा
याद हमें हर पल जो आए।
आखिर क्या अपराध हमारा?
हमसे क्यूँ मुख मोड़ गए?
साथ भला क्यूँ छोड़ गए।

कल की ही तो है यह बात,
वादा किया हमारे साथ।
'जीना-मरना साथ रहेगा,
पर आया क्यूँ दु:खद प्रभात?
विस्मृत करके अपना वादा,
क्यूँ सब नाते तोड़ गए?
साथ भला क्यूँ छोड़ गए?

आखिर ऐसा वादा क्यूँ

आपाधापी इस जीवन की,
संघर्षों का वह जीवन-पथ।
कोई शिकवा-गिला नहीं,
हो गए भले पथ में लथपथ।
मंजिल अब तो निकट खड़ी,
पर साथ रहा यह आधा क्यूँ?
आखिर ऐसा वादा क्यूँ?

ढूँढ़ लिया दु:ख में ही सुख को,
कष्टों से वे बिन घबराए।
सोए भूखे पेट कभी, तो
सूखी रोटी भी खाए।
जब आई सुख की बेला तो,
बदला नेक इरादा क्यूँ?
आखिर ऐसा वादा क्यूँ?

सबकी उन्नति की खातिर वे,
निशि-दिन रहते थे तत्पर।
करुणासागर, दयासिंधु वे,
हर संकट का थे उत्तर।

बाबूजी अब आते होंगे...

बिन नागा वे रोज सबेरे,
हर भिनसारे
घर से निकले
चले दुआरे
मड़ई में लेने को चारा।
किसे पुकारा
बाबूजी ने
शायद प्यारी गैया-बछिया को
जो तकती रहतीं राह
रोज भोर में
आस लगाए
बाबूजी अब आते होंगे···

× × ×

गैया-बछिया को देकर चारा,
उन्हें दुलारा औ' पुचकारा,
पागुर करती गाय
रँभाती उन्हें देखकर,
बछिया करती है कल्लोलें।

× × ×

बाबूजी का नित-कर्म यही
दिनचर्या अब यह जीवन की,

पर आज हुआ क्या?
लगता है वे
सुबह-सुबह ही गए कचहरी।
फिर भी मन में क्यूँ लगता है
कभी, कहीं न गए अभी तक
बिना मिले औ' बिना दुलारे,
बिन पुचकारे।
हुआ आज क्या समझ न आए
देर भई बाबू ना आए···

× × ×

"सुनो-सुनो एक बात जरूरी"
कह रही आम की डाली
"क्या है ऐसी बात जरूरी"
बोली झट गेहूँ की बाली
"क्या आज सुबह बाबूजी आए?
इंतजार हम करते-करते सोच रहे हैं
ऐसा कैसे हो सकता है
बाबूजी आएँ
वापस हो जाएँ
बिना मिले औ' बिन बतियाए।
पूछ रहे हैं ऐसे ही सब
बाबू के बारे में।
ऐसे ही कह रही कुमुदिनी
बहन करेमू से,
"क्या देखा तुमने बाबू को?"
"नहीं कुमुदिनी
नहीं दिखे वे,
आज सुबह से

राह देखते
हम भी उनकी,
कहाँ रह गए बाबूजी··· ?"

× × ×

धीरे-धीरे फैल गई यह बात आग सी
पूछा-ताछी, इक दूजे से,
"क्या देखा बाबू को ?"

× × ×

"लगता है कुछ अनहोनी है"
सुना चने को जब यह कहते
गेहूँ की बाली ने,
"चुप रह थोथे चने
तुम्हारी आदत यही पुरानी
बिना बात बजता रहता है"
"क्या है गेहूँ की बाली ?"
बोल पड़ी आम की डाली।
"करता है बकवास
चना यह झूठी-मूठी,
कहता है सुना
गाँव की
पगडंडी पर
आते-जाते लोगों को कहते, बतियाते
नहीं रहे अब
बाबूजी !···"

× × ×

"ऐसा कैसे हो सकता है
मुझे नहीं विश्वास चने की बातों पर"
"इसीलिए तो कहती हूँ कि

बेला-स्मृति

ब्रह्मांड की समस्त रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ
'माँ' के ममतामयी आँचल की छाँव में
व्यतीत अतीतपलों की अमर स्मृतियाँ,
जो जीवन का संबल हैं।

मेरी माँ

नित्य तेरे चरणों के पास
फिर भी मन है बहुत उदास
आता नहीं मुझे कुछ रास।
कुछ तो बता, अब राह दिखा,
मेरी माँ! मेरी माँ!!

छाया संकट और निराशा,
जीवन में अब घोर हताशा,
लगता खंखर हुआ पलाश।
दे दे पता अब राह दिखा,
मेरी माँ! मेरी माँ!!

पूत कपूत भले ही बने,
मातु कृपा तो सनेह सने,
केवल अब तेरी ही आस।
कर माफ खता अब राह दिखा,
मेरी माँ! मेरी माँ!!

तुझमें ही तो प्रभु की सूरत,
माँ तू ही ममता की मूरत,
अटक रही जीवन की श्वास।
बेड़ी हटा, अब राह दिखा,
मेरी माँ! मेरी माँ!!

□

माँ है तेरे रूप अनेक

माँ ममता का सागर है तू,
माँ करुणा का आगर है तू,
नित पल छलके, प्रतिपल ढरके,
माँ अमृत की गागर है तू,

दया, प्रेम, अनुराग तुम्हीं से
तुम सा नहीं है कोई नेक।
माँ हैं तेरे रूप अनेक॥

समता का पर्याय तुम्हीं हो
हर पीड़ित का न्याय तुम्हीं हो
आँचल तेरा नभ से विस्तृत,
आत्म तुम्हीं माँ काय तुम्हीं हो,

समदर्शी, निर्मल, निश्छल तुम
धरा-सृष्टि की तू ही टेक।
माँ हैं तेरे रूप अनेक॥

अतुलनीय, अद्वितीय, अगोचर,
तू ही तो माँ अमर धरा पर,

कलुष-तमस से दूर ज्योतिर्मय
तू विजयी है मरण-जरा पर,

पुत्र कुपुत्र भले हो जाए
नित ममतामय तू ही एक।
माँ हैं तेरे रूप अनेक॥

□

जननी जबसे तुमसे बिछुड़े

जननी जबसे तुमसे बिछुड़े आँसू कभी नहीं थम पाए।
भौतिक सुख, ऐश्वर्य मिला पर तुझसा नेह कहीं ना पाए।

चकाचौंध महलों के पाए, सोनपरी के जादू छाए।
चहुँदिशि गंध पराग बिखरते, रंग-बिरंगे उपवन भाए।
पर आँचल की छाँव मिली ना, छोड़ जिसे बचपन में आए।
जननी जबसे तुमसे बिछुड़े आँसू कभी नहीं थम पाए।

कितने संगी-साथी पाए, रिश्ते-नाते नए बनाए।
मधुरिम गान, तान, स्वर-लहरी, नित नव प्यारे गीत सुनाए।
पर तेरी वह थपकी, लोरी, वैसा अपनापन ना पाए।
जननी जबसे तुमसे बिछुड़े आँसू कभी नहीं थम पाए।

छप्पन भोग, खीर, मनमोहन, अनुपम, अगणित रुचिकर व्यंजन।
लोग प्रशंसा करें भले माँ, मैं तो याद करूँ वह बचपन।
जब तेरी माखन औ' रोटी, बैठ तेरी गोदी में खाए।
जननी जबसे तुमसे बिछुड़े आँसू कभी नहीं थम पाए।

स्वर्ण सेज, रेशम की चादर, चुभते ऐसे जैसे नश्तर।
इससे तो माँ लाख गुना था सुखदायक, कोमल वह बिस्तर।
झीनी चादर, लेवा-कथरी, माँ तुमने थे जिन्हें बनाए।
जननी जबसे तुमसे बिछुड़े आँसू कभी नहीं थम पाए।

□

'माँ'

घूम रही माँ मंदिर-मसजिद
गिरजाघर, गुरुद्वारे।
हर मजार औ' सत्तीचौरा,
ओझा-सोखा द्वारे।

रात-दिवस या धूप-छाँव हो,
या बर्फीला मौसम।
तपती-तीखी जेठ-दुपहरी
या बारिस की रिमझिम।

धागे-गंडे, मान-मनौती
नजर और तावीजें
जगह-जगह वह धक्के खाती,
नहीं तनिक भी खीझे।

कुआँ, पोखरा, नदी किनारे,
खोज रही सौगातें।
रहे कुशल से बच्चा मेरा,
सुख की हों बरसातें।

बहुतेरे पकवान बनाए,
पर माँ ने कुछ ना खाया।
आज भी उसका निर्जल व्रत है,
पड़े न काला साया।

प्यारी माँ की ममता को,
भूल गया है बेटा।
अब तो अपनी जननी से,
करता है छल बेटा?

□

गाँव गया था माँ के पास

गाँव गया था माँ के पास
अपनी प्यारी माँ के पास।

चमक उठी हैं माँ की आँखें,
खिल आई हैं माँ की बाछें,
बुझती लौ को मिल गई आस।
गाँव गया था माँ के पास॥

फूट-फूटकर रोई माँ,
फिर सपनों में खोई माँ,
उसके लिए हुआ दिन खास।
गाँव गया था माँ के पास॥

कुछ पल तो चुपचाप रही,
फिर उसने यह बात कही,
बेटा क्यूँ लग रहे उदास?
गाँव गया था माँ के पास॥

घर के भीतर, घर के बाहर,
ढूँढ़ रही कुछ अच्छा रुचिकर,

आखिर माँ क्यूँ सब सहती है

आखिर माँ क्यूँ सब सहती है,
हरपल क्यूँ वह चुप रहती है।
शायद यह है वहम हमारा,
हर पल वह कुछ कहती है॥

समझ नहीं पाते हैं हम,
उसकी खुशियाँ, उसके गम
घूँट-घूँट पीती रहती है,
फिर भी आँखें दिखें न नम।
हिय में व्याकुलता है फिर भी,
वाणी कुछ ना कहती है।
आखिर माँ क्यूँ सब सहती है,
हर पल क्यूँ वह चुप रहती है।
शायद यह है वहम हमारा,
हर पल वह कुछ कहती है॥

जब जीवन की नींव पड़ी,
तब से ही माँ संग खड़ी,
भूल गए हम उसकी गुरुता,
पर उससे क्या चीज बड़ी।
माँ ही सूरज, चाँद-सितारा,
माँ ही प्यारी धरती है।

गुम-सुम खोई, मौन हुई,
फिर जाने क्या कहती है,
आखिर माँ क्यूँ सब सहती है?
हर पल क्यूँ वह चुप रहती है।
शायद यह है वहम हमारा,
हर पल वह कुछ कहती है॥

कैसे भूलूँ अपना बचपन
माँ ही थी जब दिल की धड़कन
'योग-क्षेम' की वाहक बनकर,
करती रही दूर हर अड़चन।
वह तो संतानों के हित में,
हर क्षण तत्पर रहती है।
आखिर माँ क्यूँ सब सहती है,
हर पल क्यूँ वह चुप रहती है।
शायद यह है वहम हमारा,
हर पल वह कुछ कहती है॥

रिश्ता यही अनोखा केवल,
बाकी सबकुछ धोखा केवल,
सच है माँ की स्नेहिल छाया,
सब आँधी का झोंका केवल।
माँ तो अंत:सलिला जैसी,
जीवन के संग बहती है।
आखिर माँ क्यूँ सब सहती है,
हर पल क्यूँ वह चुप रहती है।
शायद यह है वहम हमारा,
हर पल वह कुछ कहती है॥

□

माँ ही है अनमोल रतन

क्यूँ कहती माँ मुझको निशिदिन, "तू प्यारा अनमोल रतन।"
पर सच केवल जिसे न कहती, "माँ ही है अनमोल रतन।"
माँ के आगे धन औ' दौलत सब फीके पड़ जाते हैं।
माँ का आँचल, माँ की ममता इनको मेरा कोटि नमन।
पर सच केवल जिसे न कहती, "माँ ही है अनमोल रतन॥"

तुच्छ बीज यदि बने महावट, खून से किसने सींचे?
अनगढ़ पत्थर पूज्य बने यदि, कौन है इसके पीछे?
गढ़-गढ़ खोट निकाले जिसने, ऐसी अपनी माता।
बुरी नजर से दूर बचाया, उसने लाखों किए जतन।
पर सच केवल जिसे न कहती, "माँ ही है अनमोल रतन॥"

मिटा दिया अस्तित्व स्वयं का, उसने हमको दी पहचान।
सबकुछ हम पर न्योछावर कर उसने सहे सभी अपमान।
खुशियों की सौगात ढूँढ़ती, हर पल चिंता करती है
सच्चरित्र, सद्गुणी बने हम हरा-भरा हो सदा चमन।
पर सच केवल जिसे न कहती, "माँ ही है अनमोल रतन॥"

माँ बहुत पुराना नाता है

तेरी ही गोदी में पलकर
पैरों पर हम खड़े हुए।
तेरी आँचल की छाया में,
माँ! हम इतने बड़े हुए।
यादें औ' सपने बचपन के,
दिल में मेरे जड़े हुए।
विस्मृत कैसे कर दूँ तुमको,
चैन नहीं मिल पाता है।
बहुत पुराना नाता है,
माँ बहुत पुराना नाता है॥

कभी केशपाशो से तेरे,
दिन भर था खेला करता।
कभी कहानी सुनता तुमसे,
बाँहों में झूला करता।
बीते दिन कब, आई रातें,
इसका पता नहीं चलता।
तेरी उन प्यारी यादों से
माँ, मन नहीं अघाता है।
बहुत पुराना नाता है,
माँ बहुत पुराना नाता है॥

कितने प्यारे दिन थे अपने,
जब तक तेरा साथ रहा।
हर पल मेरा सुखद सुहाना
सिर पर तेरा हाथ रहा।
अब तो सबकुछ खंखर-जर्जर,
केवल कष्टों का साथ रहा।
पर तेरी यादों का संबल
मरहम सा बन जाता है।
बहुत पुराना नाता है,
माँ बहुत पुराना नाता है॥

□

विविधा

जीवन में सभी संबंध महत्त्वपूर्ण हैं
किंतु माता-पिता का संबंध
सार्वकालिक व सार्वदेशिक है।
बिना इनके सबकुछ रीता है।

यादें···

गाँव गया,
यादों के साथ,
यादों के पास···

× × ×

बंद किवाड़ें,
लटक रहे
उन पर ताले अलीगढ़ी,
बार-बार मन कोस रहा है
कैसी वह मनहूस घड़ी
छोड़ गए जब
हमें अकेले बाबू-माई···

× × ×

जंग लगे ताले-चाभी में
कुछ पल जंग चली
जीत-हार की खातिर उनमें
रार और तकरार बढ़ी
फिर सकुचाकर औ' शरमाकर
खुल गए ताले अलीगढ़ी···

× × ×

×   ×   ×

दरवाजे पर दस्तक···
टूटा गया मेरा सपना
लगता आए बाबूजी
लेकिन यह भी था सपना,
फिर सँभला औ' बाहर आया,
खड़े सामने
परिजन और पड़ोसी
पूछ रहे हैं कुशल-क्षेम
पर समझ रहा मैं खुद को दोषी
''छोड़ दिया क्यूँ तूने भैया
इस घर में आना-जाना···''
क्या बोलूँ औ' कैसे बोलूँ
करूँ मैं कौन बहाना?
''कभी-कभी तो आया कर
दीया-बाती कर जाया कर···''
''यह घर बिन दीया-बाती के
रहता है कितना सूना''
सुनकर इनकी बातें लगता
इनका दु:ख मुझसे दूना।
इन लोगों ने भी तो खोया
अपना एक पड़ोसी
कदरदान था रिश्तों का जो
परहित थी जिसकी थाती,
योग-क्षेम का वाहक था जो
सुख-दु:ख का था साथी
रोशन करता इनकी दुनिया
जलकर जैसे दीप की बाती···

× × ×

सारे घर की यही दशा है
सबके मन में किसकी यादें
सबके मन में कौन बसा है…

× × ×

बंद पड़ा वह हैंडपंप
मन करता अब रोने को
बार-बार की कोशिश पर भी
मिला न पानी धोने को
मुँह-हाथ,
छोड़ दिया है साथ
हमारा, उसकी भी तकलीफ,
दशा यह
माई-बाबू के जाने से…

× × ×

मोह कहाँ अब और किसी को
गाँव-देश, इस माटी से,
भाग रहे हैं शहर-शहर
मुख मोड़ पुरानी थाती से।
किसके पीछे, किसकी खातिर,
यही पूछते शायद मुझसे,
बाग-बगीचे, खेत और खलिहान
पड़े जो बिल्कुल सूने,
यही पूछती गैया-बछिया, सारे गोरू,
खाली जिनकी नाँदें, खूँटे सूने,
जर्जर मड़ई, बैठक खाली,
सूखा कुआँ, जगत् भी टूटी,

नहीं बुलाता अब कोई,
बेटा आ जा अंदर
बाहर धूप बहुत है
चल रहे थपेड़े लू के,
पी ले गोरस, घोल सत्तू के;
नहीं लगेगी लू इससे।
बार-बार यह बात उभरती मन में,
आखिर कौन कहेगा?
खड़ी दुपहरी, कड़ी धूप है,
साँझ ढले तब जाना मिलने
नाते-रिश्तेदारों से···

× × ×

साँझ ढल गई, दीप जल गए,
आस-पास के घर में।
घोर अँधेरा बढ़ता जाता
लेकिन अपने इस घर में,
नहीं कर सका दीया-बाती।
सोच रहा हूँ
ढूँढ़ रहा हूँ
लालटेन, वह ढिबरी
ना जाने अब कहाँ पड़ी हैं?
हुई निराशा थका ढूँढ़ कर
नहीं मिला कुछ
रोशन करने को घर;
यह घना अँधेरा,
दूर करेगा कोई कैसे
जब नहीं यहाँ अब

×　×　×

बेमन लौटा खाना खाकर,
परिजन के घर से,
सोने अपने घर में
सोया टूटी खटिया, गंदे बिस्तर पर,
पर नींद कहाँ आती है ?
बातें कौंध रही हैं मन में,
आज सुनी जो मैंने
जिसे सुनाई लोगों ने मुझको।
वे शब्द–बाण
बींध रहे हैं मेरे हिय को···
मैं देख रहा हूँ
समझ रहा हूँ
फर्क यहाँ जो माई–बाबू के जाने से···

×　×　×

देखा इधर–उधर सब सोए,
फिर उठ बाहर
लगा टहलने
भौंक रहे हैं कुत्ते सारे
मुझे देखकर,
उनको भी लग रहा अजनबी
इसीलिए तो भौंक रहे वे जोर–जोर से।
थे तो कुत्ते वही पुराने,
शायद तब तक
मैं उनको लगता था, जाना–पहचाना,
लगता है पहचान वहीं तक मुझसे उनकी
जब तक थे साथ हमारे माई–बाबू···

×　×　×

स्वाभाविक सी बात
नहीं रहे जब माई-बाबू
तो क्यूँ न हो सब
बदला-बदला, अनजाना,
अन पहचाना, बेगाना···
रिश्तों के तो मूल वही थे···

× × ×

देख रहा हूँ आसमान को,
वंचक चंदा-मामा को
कुम्हलाए, मुरझाए तारकगण
दे रहे उलाहना
जब तक थे माई-बाबू
वे जिए तुम्हारी खातिर
पर तू···
जिया
केवल अपनी खातिर,
अपनी शर्तों पर,
यह एहसास कराते
तुमसे ही चलता ऑफिस,
सारी राज-व्यवस्था
यदि माई-बाबू से मिलने की खातिर
ली छुट्टी तो
रुक जायेगें काम-धाम सब सारे,
चलता नहीं बिना तुम्हारे
कुछ भी···
तीज और त्योहारों में भी
नहीं बनाती माई

स्वाद भरे पकवान
पहले जैसे,
दिनभर रोते-रोते,
तकते-तकते राह
वेसुध सी हो जाती
फिर अकस्मात वह कहती
आखिर क्या मतलब छप्पन व्यंजन का,
मतलब क्या है त्योहारों का,
जब नहीं पास में
प्यारा राज दुलारा…
इच्छा बाबू की, माई का आग्रह
आ जाओ इस बार,
फाग के त्योहारों में
फिर वही बहाना,
नहीं मिल रही छुट्टी
शायद जैसे
पी रखी थी घुट्टी,
घिसा-पिटा यह उत्तर
नहीं मिल रही छुट्टी…

× × ×

छोड़ गये हैं जब से
माई-बाबू तबसे
अब तक
जितनी भी तक रातें बीतीं है,
नहीं लगी थी कभी भयानक
जितनी है यह रात…

× × ×